संगीत शिक्षण की पद्वतियां

डॉ0 इला मालवीय
विभागाध्यक्ष संगीत विभाग,
एसोसिएट प्रोफेसर संगीत गायन
आर्यकन्या डिग्री कॉलेज
इलाहाबाद

व्यवसायिक एवं शिक्षण संस्थाओं में संगीत शिक्षा की वर्तमान स्थिति, उसके गुण और दोषों तथा उसमें कैसे सुधार लाया जाए, इस पर विचार विमर्श के पहले हमारे लिए यह जान लेना आवश्यक है कि हमें हमारे पुरखों ने संगीत कला एवं शास्त्र के सम्बन्ध में क्या धाती सौंपी है और हम अपने आगे आने वाली पीढ़ी को क्या विरासत देंगे। यह ध्यान रखना जरूरी है कि कहीं ऐसा न हो कि हमारी आगे आने वाली पीढ़ी हमें कोसे कि हम अपनी विरासत को ठीक से सजा–संवारकर सौंप कर नहीं गये हैं।

"संगीत शिक्षा प्रदान करने के लिए गुरू में कुछ विशेष गुण आवश्यक होते हैं। संगीत एक सृजनशील कला है इस कला में लगातार सृजनशीलता की आवश्यकता होती है, परन्तु व्यक्तिगत सृजनशीलता और दूसरों के कण्ठ या वाद्य से निकलवाना परस्पर कठिन और भिन्न कार्य है। गुरू को केवल कला का तकनीकी ज्ञान ही विद्यार्थी के कण्ठ अथवा हाथ में नहीं बैठना होता अपितु संगीतोपयुक्त संस्कारों को भी उसके मन में डालना होता है, जिससे उसकी सृजनशीलता की शक्ति का विकास हो सके। इसके साथ ही शिष्य को विनम्र भाव से गुरू को आदर सम्मान देते हुए धैर्य पूर्वक कठिन परिश्रम, श्रद्धा के साथ साधना करते हुए गुरू के गायन या वादन को आत्मसात करना होता है।"[1]

हम पीछे मुड़ कर देखें तो पाएंगे कि हमें यह धरोहर अत्यन्त प्राचीनकाल से वेदों विशेषतया सामवेद के माध्यम से मिली है। कहा भी गया है कि वेदों में सामवेद सर्वश्रेष्ठ है, कदाचित इसलिए कि सामवेद के प्रणेताओं ने अन्य वेदों की ऋचाओं को सस्वर और लयात्मक ढंग से प्रस्तुत किया। बाद में यही स्वरात्मक और लयात्मक ढंग से प्रस्तुति हमारे वेदोत्तर पौराणिक एवं धर्मग्रंथों में अपनायी गयी ।

संगीत से सम्बन्धित हमारा प्राचीनतम प्राप्य ग्रन्थ भरतकृत "नाट्यशास्त्र" है। भरत ने परम्परा से आने वाले संगीत तत्वों का विवेचना किया । यद्यपि नाट्य शास्त्र में सांगीतिक प्रयोगों और शिक्षा में स्त्री एवं पुरूष का उल्लेख है पर यह शिक्षा समाज के किस वर्ग को प्राप्य थी यह स्पष्टतया

उल्लिखित नहीं है पर परम्परागत् संगीत शिक्षा का प्रसार वैदिक और धर्मग्रन्थों व पुराणों के माध्यम से होता था। यह सहज रूप से अनुभव किया जा सकता है कि संगीत शिक्षा सामान्यतया उच्च वर्ग तक ही सीमित रही होगी। उस समय लोगों का यह विचार था कि निम्न वर्ग की संगीत पाकर लोग क्षुद्र आचरण करने वाले हो जाएंगे और सम्भव है कि संगीत शास्त्र की पावनता में भी दाग लग जाएगा।

भारत में मुसलमानों के आक्रमण से पहले पूरे देश में एक सी गुरू–शिष्य संगीत शिक्षा प्रणाली प्रचलित थी। धीरे–धीरे देश की अन्य कलाओं पर विभिन्न जातियों के सम्पर्क से प्रभाव पड़ा उसी प्रकार संगीत पर भी उसका प्रभाव देखा गया। धीरे–धीरे संगीत आश्रमों से निकलकर राजे–रजवाड़ों में दरबारों तथा महलों में सीमित होकर रह गया। तत्कालीन अधिकांश संगीतकार राज्याश्रय छिन जाने की आशंका से अपने कला ज्ञान को अन्य संगीतेच्छुक व्यक्तियों को देने में संकोच करने लगे। फलतः इस गौरवशाली कला के कई सुनहरे अंश लुप्त प्राय हो गये। जगत विख्यात पं0 रवि शंकर जी, उस्ताद अली अकबर खॉ साहब तथा प्रातः स्मरणीय उ0 अलाउद्दीन खॉ की जीवनी पर नजर डालें तो ज्ञान प्राप्ति के लिए उन्होंने कैसे–कैसे पापड़ बेले। इन सबका वृतान्त पढ़कर अत्यन्त दुख होता है। उस काल में जब पुरूषों को संगीत शिक्षा प्राप्त करने में दुश्वारियाँ थीं तो यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि स्त्री वर्ग को, विशेषतया जो अभिजात्य वर्ग की थीं, कितनी परेशानियाँ उठानी पड़ी होगी। स्त्रियों में संगीत शिक्षा की उपयोगिता केवल उन्हीं स्त्रियों के लिए थी जो हल्के दर्जे की समझी जाती थीं और समाज में नृत्य और गायन के माध्यम से दिल बहलाने का धन्धा करती थीं।

हर सिक्के के दो पहलू होते हैं। संगीत कला इसका अपवाद नहीं रही। जहाँ एक ओर उसके सामने अनेकानेक बाधाएँ आती गई, वहीं एक सुखद परिणाम यह रहा कि यह कला लोक संगीत, भक्ति संगीत और सुगम संगीत के रूप में सामने आई। इस रूप में संगीत की शिक्षा सुलभ और सरल होने के कारण उसका प्रचार–प्रसार बढ़ता गया। यद्यपि शास्त्रीय संगीत की शिक्षा दुरूह हो गई थी पर उसकी उपयोगिता और उसका प्रभाव संगीत की अन्य प्रणालियों पर बराबर बना रहा।

"संगीत शिक्षा का प्रबन्ध संगीतशालाओं द्वारा किया जाता था। ललित कलाओं की संस्थाओं में आचार्यो को उनकी योग्यता के अनुसार राज्य की ओर से वेतन दिया जाता था। संगीतकाल का अध्ययन, सांस्कृतिक उपलब्धि के रूप में किया जाता था, और आवश्यकता के समय जीविका निर्वाह के लिए भी उसका उपयोग कर लिया जाता था।"[2]

अठ्ारहवीं शती के अन्तिम दिनों में भारत में यूरोपीय शासन चरम सीमा पर था जिसने भारतीय संगीत एवं संगीत शिक्षा की दिशा बदल दी। संगीत की शिक्षा में बिखराव के साथ–साथ विविधता भी आई। फूट डालने की प्रवृत्ति से उत्तर और दक्षिण भारत में अलग–अलग संगीत प्रणाली का स्पष्ट अभ्युदय हुआ। फिर भी भारतीय संगीत मरा नहीं, विश्व संगीत में उसका वर्चस्व बना रहा। कैप्टन विलर्ड नामक एक अग्रेंज ने सनृ 1814 में "ए ट्रीटीज ऑन द म्यूजिक ऑफ हिन्दुस्तान" का प्रणयन किया। इसके बाद ही विदेशों में भारतीय संगीत के प्रति हीन भावना पूर्णतया समाप्त हो गई। जैसा कि सभी क्षेत्रों में देखा गया है कि हम शिक्षित एवं प्रबुद्ध भारतीयों को अपनी परम्पराओं की श्रेष्ठता की अनुभूति तब होती है जब उस पर विदेशियों की प्रशंसा का ठप्पा लग जाता है। विदेशी प्रशंसाओं के कारण संगीत कला एवं उसकी शिक्षा का प्रचार–प्रसार अभिजात्य वर्ग से निकल कर सामान्य भारती जनों में हुआ।

"मानसिंह तौमर काल के उपरांत आधुनिक काल पूर्वत्तर अन्य किसी राजा या महाराजा द्वारा संगीत विद्यालय स्थापित कराये जाने का प्रमाणिक उल्लेख हमें प्राप्त नहीं होता। इस समबन्ध में छुट–पुट प्रयास 19वीं शता. से प्रारम्भ हुए। अंग्रेजी शासन की स्थापना के साथ ही सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली का पाश्चात्यीकरण प्रारम्भ हुआ। मानविकीय एवं विज्ञान के साथ–साथ ललित कलाओं एवं संगीत की शिक्षा भी गुरूकुल प्रणाली के स्थान पर संस्थाओं या विद्यालयों से सामूहिक रीति से प्रारम्भ हुई। जन सामान्य से अधिकतम प्रचार–प्रसार शिक्षण में नियमबद्धता एवं स्तरीयता के उद्देश्य से संगीत विषय की संस्थागत सामूहिक शिक्षण विधि अनाई जाने लगी।"[3]

संगीत शिक्षण में पुरानी गुरू–शिष्य परम्परा वाली पद्वति अभी भी विशेष कलाकारों के निर्देशन में काफी सीमित दायरे में चल रही है। किन्तु धीरे–धीरे व्यवसायिक एवं शिक्षण संस्थाओं द्वारा समवेत प्रयास से इसका प्रचार प्रसार सामान्य जनों में भी हुआ। भारतीय जन पं0 विष्णु नारायण भातखण्डे तथा पं0 विष्णु दिगम्बर जी पलुस्कर जैसे मनीषियों के अथक प्रयासों का सदा ऋणी रहेगा। इन विद्वानों ने देश भर में विभिन्न स्थानों पर संगीत सम्मेलनों का आयोजन करके पूरे समाज में संगीत के प्रति आदर भाव को जगाया । यही नहीं उन्होंने संगीत में समानता लाने के लिए नई पद्धतियों का निर्माण किया और संगीत शिक्षा को सभी के लिए सुलभ कराने के लिए देश के विभिन्न स्थानों पर संगीत शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की। फलतः वर्तमान संगीत शिक्षा का व्यवसायिकएवं शिक्षण संस्थाओं में प्रचलन प्रारम्भ हुआ। इस नई मिली धरोहर का लाभ हम कैसे उठाएँ इस पर हमें खुलकर विचारों का आदान–प्रदान करना होगा।

जैसा कि अभी कहा गया कि पंडित द्वय भातखण्डे जी एवं पलुस्कर जी द्वारा शास्त्रीय एवं सुगम संगीत की धाराओं को जोड़कर संगीत शिक्षा के प्रति समाज में नई चेतना जगाई गई थी। उनकी पुस्तकों के माध्यम से शास्त्रीय संगीत में विभिन्न शिक्षण संस्थाओं में कक्षावार क्रमबद्ध पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया। इन विद्यालयों में स्त्री–पुरूष या जाति भेद के अनुसार शिक्षण व्यवस्था नहीं थी बल्कि सभी जाति एवं धर्मो के लोगों को एक सी शिक्षण व्यवस्था का प्रावधान था। फलस्वरूप इन विद्यालयों में गरीब–अमीर नाम मात्र का शुल्क देकर संगीत शिक्षा का लाभ उठा सकते थे। यही नहीं शिक्षण संस्थाओं में संगीत शिक्षा ऐच्छिक विषय के रूप में दी जाने लगी जहाँ न केवल प्रायोगिक वरन् संगीत शास्त्र का ज्ञान भी दिया जाने लगा। धीरे–धीरे अनेक समाज सेवी संस्थाओं एवं शिक्षण संस्थाओं ने अशासकीय संगीत विद्यालयों की स्थापना की और संगीत के प्रचार–प्रसार को एक अपेक्षित गति मिली। इन संस्थाओं के साथ–साथ कुछ राज्य सरकारों ने कहीं–कहीं गुरू–शिष्य परम्परा पर आधारित संगीत शिक्षण की व्यवस्था भी की। संगीत शिक्षण संस्थाओं में न केवल नियमित छात्र वरन् स्वाध्यायी परीक्षार्थियों को भी विभिन्न परीक्षाओं में शामिल होने का लाभ मिला। इन संस्थाओं में आयु सीमा का बन्धन नहीं लगाया गया, फिर भी आज की स्थिति में संगीत शिक्षण की समुचित व्यवस्था नहीं है।

वर्तमान संगीत प्रणाली के दो सशक्त पक्ष हैं एक तो वह जिन्हें हम व्यवसायिक शिक्षण संस्थाएॅ कहते हैं और दूसरी वे जो परम्परागत शिक्षण संस्थाओं में संगीत को एक ऐच्छिक विषय के रूप में प्रस्तुत करती है। दोनों ही प्रणालियों के अपने गुण–दोष हैं। पहले समय में यदि कोई शिक्षार्थी संगीत को अपनी रोजी–रोटी का माध्यम मानकर आगे बढ़ता था तो समाज उसे हेय दृष्टि से देखता था किन्तु आज ऐसा नहीं है। संगीत शिक्षण को एक सम्मानित व्यवसाय के रूप में मान्यता मिल चुकी है।

"संगीत शिक्षा को गुरूकुल पद्धति के स्थान के माध्यम से देने के मुख्य प्रयोजन ये हैं – 1– अन्य विषयों के समकक्ष लाना, 2– अनियमितता और मनमौजीपन को दूर करना, 3– यथासम्भव अधिक सुलभ बनाना और 4– समाज में संगीतज्ञ को पुनः सम्मान दिलाना। वास्तव में गुरूकुल पद्धति की कमियों को दूर करना ही संस्थागत संगीत शिक्षण के जन्म का मूल कारण रहा है। संस्थाओं ने इन प्रयोजनों को पूरा करने में काफी हद तक सफलता पाई।"[4] अन्य व्यवसायों की तरह संगीत की ओर भी लोग उन्मुख हो रहे हैं। विदेशों की संगीत प्रणालियों में प्रयुक्त होने वाले वैज्ञानिक उपकरणों को यथोचित संशोधनों के साथ हम अपने परिवेश के अनुसार ढाल रहे हैं।

फलतः जहाँ हम शेष विश्व के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने को तैयार हैं वहीं संगीत एक सम्मानित व्यवसाय के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका है। इस कारण न केवल निपुण संगीतज्ञ उपलब्ध हो रहे हैं वरन् वाद्य यन्त्रों के निर्माताओं, सुधारकों, वीडियो, कैसेट एवं सी डी तैयार करने वाले तकनीकी रूचि वाले व्यक्तियों को भी रोजगार उपलब्ध हो रहा है। संगीत शास्त्र की सभी विधाओं यथा गायन, वादन और नृत्य की प्राचीन से लेकर वर्तमान तक की उत्कृष्य पुस्तकों के लेखन तथा प्रकाशन कें साथ न केवल प्रबुद्ध संगीत शास्त्रियों वरन् प्रकाशन से सम्बन्धित सभी व्यक्तियों को लाभ पहुॅच रहा है। साथ ही संगीत सम्बन्धी साहित्य और शास्त्र के उत्कृष्ट ग्रन्थों पुस्तकालयों तथा शिक्षार्थियों को सुगमता से उपलब्ध हो रहे हैं।

संगीत की शिक्षण संस्थाओं, चाहे वह वयवसायिक हों या सामान्य, संगीत शिक्षण व्यवस्था निश्चित तथा सामान्य शिक्षार्थी के मानसिक स्तर की होने के कारण उसका मार्ग निश्चित दिशा में प्रशस्त करती है। यह स्वयं शिक्षार्थी पर निर्भर करता है कि वह नियमित रहकर तथा अभ्यास करके कितना अधिक लाभ उठा पाता है तथा अपनी अभिरूचि के अनुसार वह संगीत की किस विधा को अपनाता है।

"संगीत शिक्षण से विद्यार्थी में साधना–शक्ति व संयम पल्लवित होता है। कण्ठ संगीत की ब्रवाहात्यकता दीर्घ श्वास – प्रक्रिया से व वाद्य संगीत अंग–विशेष के संचालन की प्रक्रिया से तथा नृत्य शारीरिक अंगों व भाव भंगिमाओं की प्रक्रिया से सीधा सम्बन्ध रखते हैं। परन्तु भावनात्मक अभिव्यक्ति के लिए यह तीनों ही शिक्षार्थी की वैयक्तिक प्रतिभा व कला–कौशल की अपेक्षा रखते हैं। क्योंकि शारीरिक व मानसिक वृत्तियों का समन्वय ही भावनात्मक व रचनात्मक क्रियाशीलता को परिपक्व कर आत्मभिव्यक्ति का अवसर प्रदान करता है।"[5]

किन्तु, वर्तमान संगीत शिक्षण प्रणाली में कुछ दोष भी हैं जिनका निवारण आवश्यक है ताकि संगीत शिक्षण को और अधिक उपयोगी बनाया जा सके। वर्तमान समय में कक्षाओं में शिक्षार्थियों की संख्या अधिक होती है, जिसके कारण प्रत्येक विद्यार्थी की क्षमता के अनुसार शिक्षक को उसे समुचित निर्देशन देने का उपयुक्त अवसर नहीं मिल पाता। तीव्र बुद्धि के शिक्षार्थियों पर अतिरिक्त ध्यान देने की आवश्यकता पूरी नहीं हो पाती। कभी–कभी यह देखा जाता है कि तीव्र बुद्धि वाले छात्र अपने सहपाठियों की कमियों को भी उतनी ही तीव्रता से ग्रहण कर लेते हैं जितनी तीव्रता से वह अच्छाई ग्रहण करते हैं। ऐसी स्थिति में शिक्षकों को ही ध्यान देना होगा, जिससे गुरू–शिष्य सम्बन्धों में उदासीनता न आए और संगीत शिक्षण औपचारिकता का बोझ न होकर सरल और स्वस्थ वातावरण

का सृजन करें। अतः आवश्यक है कि संगीत शिक्षार्थियों के चयन मं सावधानी बरती जाए। जो शिक्षार्थी संगीत की जिस विधा कें लिए उपयुक्त हो उसे उसी विधा में जाने के लिए दिशा निर्देश दिया जाए तथा उसके शिक्षण की समुचित व्यवस्था की जाए ।न हो कि विद्यार्थी को सभी विधाओं की सतही जानकारी भर हो जाए और वह किसी एक विधा में पूर्णतया सक्षम न हो पाए। इसका भी पूरा ध्यान रखना होगा कि शास्त्र के रूप में, वाद्य यन्त्रों के रूप में अथवा प्रयोगात्मक संगीत के रूप में जो भी हम विद्यार्थियों को दे रहे हैं वे पूर्णतया स्तरीय हों।

JETIR